अध्याय –4

नागरी लिपि और हिंदी प्रचार–प्रसार

प्रमुख व्यक्तियों के योगदान

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में भावनात्मक संदर्भ की क्रांति शुरू हुई। उस समय देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। देश में होने वाले आन्दोलनों से जन–जीवन प्रभावित हो रहा था। भारत की राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय आन्दोलन के लए एक भाषा की आवश्यकता सामने आई। इस आवश्यकता के संदर्भ में डॉ0 अम्बा शंकर नागर का मन्तव्य उद्धरणीय है– ''सन् 1857 का आन्दोलन दासता के विरूद्ध स्वतंत्रता का पहला आंदोलन था। यह आन्दोलन यद्यपि संगठन और एकता के अभाव के कारण असफल रहा, पर इसने भारतवासियों के हृदय में स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न कर दी। आगे चलकर जब भारत के विभिन्न प्रांतों में स्वतंत्रता के लिए संगठित प्रयत्न आरंभ हुए तो यह स्पष्ट हो गया कि बिना एक सामान्य भाषा के देश में संगठन होना असंभव है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक, धार्मिक ही नहीं, राजनीतिक आंदोलनों में हिंदी मुख्य भाषा सिद्ध हुई इस प्रकार हिंदी को व्यापक जनाधार मिला। राष्ट्रीय भावना जगाने हेतु हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग किया गया। विभिन्न व्यक्तियों ओर संस्थानों द्वारा हिन्दी–प्रयोग हेतु आंदोलन के रूप में कार्य किया गया है।

1. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक – लोकमान्य तिलक प्रारंभ में परम विनम्र नेता थे। परिस्थितियों ने उन्हें ओजस्वी नेता बना दिया। 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा देने वाले तिलक 'स्वदेशी' के प्रबल समर्थक थे। उनकी मान्यता थी कि हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा की पदाधिकारी है। उन्होंने हिंदी विषय में कहा था– ''हिन्दी राष्ट्रभाषा बन सकती है मेरी समझ में हिंदी भारत की सामान्य भाषा होनी चाहिए, यानि समस्त हिन्दुस्तान में बोली जाने वाली भाषा होनी चाहिए।''

   लोकमान्य तिलक देवनागरी को 'राष्ट्रलिपि' और हिदी को 'राष्ट्रभाषा' मानते थे। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के दिसम्बर, 1905 के अधिवेशन में कहा था –

   ''भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रभाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है। समान भाषा के द्वारा हम अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं। अतएव यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक–दूसरे के निकट लाना चाहें तो सबके लिए समान भाषा से बढ़र सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।'' उन्होंने जनसामान्य तक अपने विचार पहुँचाने के लिए 'हिंदी केसरी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। हिंदी का यह पत्र पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। लोकमान्य तिलक जीवन भर हिंदी के प्रचार–प्रसार में लगे हुए थे। उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के लिए बार–बार आग्रह किया था। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने अंग्रेजी में भाषण देना छोड़कर हिंदी सीखी और हिंदी के प्रबल समर्थक बन गए थे, यह उनका हिंदी और देश–प्रेम ही था।

2. लाला लाजपतराय – पंजाब केसरी लाला लाजपतराय प्रबल आर्य समाजी देशभक्त थे। वे महान–देश प्रेमी और ओजस्वी वक्ता थे। स्वदेशी वस्तुओं के समर्थक और विदेशी वस्तुओं के विरोधी थे। उन्होंने अंग्रेजी और पंजाबी पत्र के साथ 'वन्देमातरम्' दैनिक उर्दू पत्र का प्रकाशन किया। उन दिनों पंजाब में हिंदी–उर्दू का

विवाद चल रहा था। पंजाब में हिंदी प्रचार–प्रसार में लाला लाजपतराय की बलवती भूमिका थी। उन्होंने सन् 1911 में पंजाब शिक्षा संघ की स्थापना की। शिक्षा में हिंदी को समुचित स्थान दिलाने का सराहनीय प्रयास किया। सन् 1886 में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो–वैदिक कॉलेज की स्थापना की गई। इससे हिंदी प्रसार का सुदृढ़ आधार मिला। इस कॉलेज में सभी विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ने की अनिवार्यता थी। लाला लाजपतराय के प्रयास से पंजाब विश्वविद्यालय में हिंदी को सम्मानीय स्थान मिला। उन्हीं का प्रयास था कि पंजाब विश्वविद्यालय में रत्न और प्रभाकर के माध्यम से हिंदी को पाठ्यक्रम में स्थान मिला। हरियाणा के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन परिक्षाओं का सूत्रपात भी वहीं से हुआ।

3. पं0 मदन मोहन मालवीय – मालवीय जी महान् राष्ट्रीय नेता थे। उन्हें तीन बार हिन्दु महासभा के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। वे सन् 1884 से राष्ट्रीय कार्यों में समर्पित होकर लग गए थे। वे अपने क्रियाकलापों में हिंदी का प्रयोग करते हुए औरों में भी हिन्दी–प्रेम जगाते रहे हैं। सन् 1886 के अधिवेशन में मालवीय जी के व्याख्यान से प्रभावित होकर काला कांकर के राजा ने इन्हें 'हिन्दुस्तान' दैनिक पत्र का संपादक बनाया था। यहीं से उनकी हिंदी–सेवा का अनुप्रेरक रूप सामने आया है। उन्होंने 1907 ई0 में साप्ताहिक हिंदी 'अभ्युदय' का प्रारंभ किया। यह पत्र सन् 1915 में दैनिक समाचार–पत्र बना। मालवीय जी ने हिंदी प्रचार–प्रसार को गति देने के लिए सन् 1910 में प्रयोग (इलाहाबाद) से 'मर्यादा' हिंदी मासिक पत्रिका और 20 जुलाई, 1933 'सनातन धर्म' हिंदी पत्र का प्रकाशन शुरू किया है। मालवीय जी हिंदी के महान् प्रेमी थे। इनकी प्रेरणा से 'भारत', 'हिन्दुस्तान' और 'विश्वबन्धु' जैसे चर्चित पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ है।

मालवीय जी के मन में हिंदी के लिए विशेष आदर भाव था, इसलिए उन्होंने शिक्षा में हिंदी की अनिवार्यता पर बल दिया। सन् 1917 में बनारस हिंदु विश्वविद्यालय की स्थापना की दृष्टि से हुई है। यहाँ के सभी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षा अनिवार्य थी। उन्होंने भाषा के विषय में स्पष्ट रूप से कहा था– ''राष्ट्रीय शिक्षा अपनी उत्तमता के उच्च शिखर पर तब तक नहीं पहुंच सकती, जब तक जनता की मातृभाषा अपने उचित स्थान पर शिक्षा के माध्यम तथा सर्वसाधारण के व्यवहार के रूप में स्थापित न की जाए।''

उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में हिंदी के लिए प्रबल संघर्ष किया। राजा शिवप्रसाद सितारे–हिंद के साथ न्यायालय में हिंदी और देवनागरी के लिए जोरदार संघर्ष किया। उन्होंने कहा था कि जनता को न्याय दिलाने के लिए न्यायालय की भाषा हिंदी ही होनी चाहिए। न्यायालयों में हिंदी को स्थान दिलाने का श्रेय मालवीय जी को है।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना सन् 1893 में हुई। इसकी स्थापना में मालवीय जी की विशेष भूमिका रही है। हिंदी प्रचार के अग्रणी नेता मालवीय जी 10 अक्तूबर, 1910 को सम्पन्न हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष थे। उनकी प्रेरणा से देश में हिंदी के प्रति प्रबल अनुराग और राष्ट्रीयता का भाव जगा है।

4. महात्मा गाँधी – स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गाँधी सजग, साहसी और आदर्श नेता के रूप में सामने आये। भारतीय आदर्शों को समाज में पल्लवित कराने में गाँधी जी ने अपने जीवन का हर पल लगाया। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद हिंदी और हिन्दुस्तान को जगाने में लग गये। सन् 1917 में गुजरात प्रदेश के भड़ौच गुजरात शिक्षा परिषद् के अधिवेशन में उन्होंने अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने का विरोध किया और हिंदी के महत्त्व पर मुक्तकंठ से चर्चा की थी– ''राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाना देश में 'ऐसपेरेण्टों' को दाखिल करना है। अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है।''

महात्मा गाँधी ने सन् 1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर के अधिवेशन में हिंदी प्रेम प्रकट करते हुए आह्वान किया था– ''आप हिंदी को भारत का राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य–पालन करना चाहिए।''

भारतवर्ष में शिक्षा के माध्यम पर दो–टूक चर्चा करते हुए गाँधी जी ने 2 सितम्बर, 1921 को कहा था, ''अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए हमारे लड़के–लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ।''

गाँधी जी की दृष्टि में हिंदी ही भारत की संपर्क भाषा के रूप में आदर्श भूमिका निभा सकती है। उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों, पत्र–पत्रिकाओं और संस्थाओं को हिंदी–प्रयोग की अनूठी प्रेरणा दी है। वे हिंदी को राष्ट्रीय एकता, स्वाधीनता की प्राप्ति और सांस्कृतिक उत्कर्ष मानते थे। उन्होंने हिंदी को साधन और साध्य दोनों रूपों में अपनाया था। महात्मा गाँधी के हिंदी–प्रेम और प्रचार–प्रसार के विषय में डॉ0 रामविलास शर्मा का कथन विशेष रूप में उल्लेखनीय है– ''दक्षिण भारत में गांधी जी और उनके अनुयायियों सहयोगियों ने जितना हिंदी प्रचार किया, उतना और किसी नेता, राजनीतिक पार्टी या सांस्कृतिक संस्था ने नहीं किया।''

गाँधी जी हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिंदी प्रचार–प्रसार को गति देने के लिए विभिन्न संस्थाओं का विशेष सहयोग लिया था। गाँधी सेवा संघ, चर्खा संघ, हरिजन सेवक संघर्ष आदि का सारा कामकाज हिंदी में होता रहा है। निश्चय ही हिन्दी–प्रसार के प्रयत्न में गाँधी जी की भूमिका अग्रगण्य रही है।

5. राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन– राष्ट्रभाषा हिंदी को संघ की राजभाषा बनाने का जो प्रयास राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने किया है, वह सदा याद किया जाता रहेगा। पं0 मदनमोहन मालवीय के दर्शाये गए मार्ग पर चल कर इन्होंने हिंदी की अनुपमेय सेवा की है। इनके द्वारा हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से की गई हिंदी की सेवा अनुपमेय रही है। टण्डन जी हिंदी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में से थे। इन्हीं की प्रेरणा से महात्मा गाँधी जी भी हिंदी साहित्य सम्मेलन से जुड़े हैं। ये लाला लाजपतराय के साथ मिलकर भी हिंदी के प्रसार में लगे रहे। लाला जी की मृत्यु के पश्चात् टण्डन जी 'लोकसेवा मण्डल' के सभापति बन कर हिंदी प्रसार में लगे रहे। इसका कार्यालय लाहौर में था। इसलिए टण्डन जी ने वहाँ की संस्थाओं के माध्यम से हिंदी का अनुप्रेरक प्रसार किया। ये हिंदी के प्रबल समर्थक थे, गाँधी जी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे। टण्डन जी की प्रेरणा से हिंदी सम्मेलन आज भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में लगा है। यह टण्डन जी की ही देन है।

6. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद– महात्मा गाँधी और हिंदी के परम् भक्त डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद अखिल भारतीय काँग्रेस के सम्माननीय सदस्य थे। विभिन्न हिंदी सम्मेलनों की अध्यक्षता और सहभागिता करते हुए इनका सहज और निकट संबंध महात्मा गाँधी, मदनमोहन मालवीय और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन से हुआ। देश की सभी हिंदी संस्थाओं से इनका गहरा संबंध था और ये पूरी रूचि और पूरे उत्साह से भाग लेते रहे हैं। वे हिंदी के प्रयोग हेतु सबको प्रेरित करते रहे हैं। उनका हिंदी के संदर्भ का विचार अनुकरणीय है–

''मैं हिंदी के प्रचार, राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीयता का मुख्य अंग मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह भाषा ऐसी हो, जिसमें हमारे विचार आसानी से साफ–साफ स्पष्टतापूर्वक व्यक्त हो सकें। राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे केवल एक जगह के ही लोग न समझें, बल्कि उसे देश के सभी प्रांतों में सुगमता से पहुँचा सकें।''

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद पर महात्मा गाँधी का विशेष प्रभाव पड़ा है। हिंदी के प्रचार–प्रसार में इनकी भूमिका को बाँधने के लिए, भारत के भिन्न–भिन्न हिस्से एक–दूसरे से संबंधित रहें, इसके लिए हिंदी की जरूरत है।'' निश्चय ही डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की हिंदी सेवा सदा ही याद की जाएगी। भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में हिंदी को सम्माननीय स्थान दिलाने का श्रेय डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को है। राष्ट्रपति के रूप में हिंदी और भारतीय भाषाओं को सम्मानजनक स्थान दिलाने का सराहनीय प्रयास किया।

7. काका कालेलकर – हिंदी के प्रचार–प्रसार में अहिंदी भाषियों का नाम गौरव से लिया जाता है। ऐसे हिन्दी–प्रेमियों में काका कालेलकर का नाम विशेष श्रद्धा से लिया जाता है। इन्होंने हिंदी के प्रसार में समर्पित होकर कार्य किया है। उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से जुड़कर और गुजरात में रहकर हिंदी प्रसार को नई दिशा प्रदान की है। उन्होंने कभी अंग्रेजी का विरोध नहीं किया, किंतु प्रादेशिक भाषाओं के समर्थक थे। उस समय हिन्दुस्तानी का अर्थ था– हिंदी और उर्दू का मिश्रित रूप। अंग्रेजों के शासन और अंग्रेजी के शासन और अंग्रेजी के प्रभाव में 'हिन्दुस्तान' के प्रसार से हिंदी को ही लाभ हुआ है। इससे जन सामान्य में हिंदी के प्रति अनुराग विकसित हुआ है। गाँधी जी के अनुयायी काका कालेलकर का नाम हिंदी–आंदोलन के संदर्भ में सदा याद किया जायेगा।

8. सेठ गोविन्ददास – हिंदी के प्रसार के साथ इसे राजभाषा के प्रतिष्ठित पद पर सुशोभित करवाने में सेठ गोविन्ददास की अविस्मरणीय भूमिका रही है। ये उच्चकोटि के साहित्यकार हैं। आपकी नाट्यकृतियों से हिंदी साहित्य मोहक रूप में समृद्ध हुआ है। उन्होंने जबलपुर से शारदा, लोकमत तथा जयहिंद पत्रों की शुरूआत कर जन–मन में हिंदी के प्रति प्रेम जगाने और साहित्यिक परिवेश बनाने का अनुप्रेरक प्रयास किया है।

   उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया और हिंदी के लिए सतत प्रयास किया। भारतीय संविधान सभा में हिंदी और हिन्दुस्तानी को लेकर उठे विवाद को शांत करने में सेठ गोविन्ददास का विशेष महत्त्व रहा है। देश के मान्य सांसद और हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में हिंदी के लिए जो प्रेरक कार्य आपने किया है, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

   हिंदी प्रसार के आन्दोलनों में हिंदी–प्रेमियों की लंबी नामावली है। जिनके सतत प्रयास से देश में राष्ट्रीयता का भाव विकसित हुआ, देश स्वतंत्र हुआ और हिंदी को सम्मानजनक स्थान मिला। इनमें स्वामी दयानन्द, श्रद्धानन्द, विनोबा भावे आदि के नाम श्रद्धा से लेने योग्य हैं।

प्रमुख संस्थाओं का योगदान

भारतवर्ष में स्वाधनीता संग्राम के साथ हिंदी का आन्दोलन भी चलाया जा रहा था, वास्तव में हिंदी का यह आंदोलन अंग्रेजी के विरोध में किया गया था। स्वतंत्रता आंदोलन के समय हिंदी या हिन्दुस्तानी ही देश की संपर्क भाषा थी। प्रत्येक आंदोलनकारी 'वन्देमातरम्' या 'जिन्दाबाद' के नारे लगाता था। इस प्रकार भारत देश की राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही थी। हिंदी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का आंदोलन चलाया गया है। इस आंदोलन की सफलता पर ही 14 सितंबर, 1949 को हिंदी राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इस आंदोलन से हिंदी का सुंदर परिवेश बना है, इसलिए इस आंदोलन को 'राष्ट्रभाषा हिंदी' या 'राजभाषा हिंदी' से जोड़ सकते हैं।

हिंदी–प्रसार आंदोलन में धर्मगुरुओं, महात्माओं, राजनेताओं और हिंदी–प्रेमियों के साथ अनेक संस्थाओं की भी सराहनीय भूमिका रही है। भारत धर्मप्रधान देश है। इसलिए हिंदी–प्रसार आंदोलन में साहित्यिक संस्थाओं के साथ धार्मिक–सामाजिक संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है।

(अ) धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाएँ– उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन की आँच में भारतवासी तप रहे थे। ईसाई

पादरियों को ईसाई धर्म–प्रचार के लिए छूट मिल चुकी थी। उनके द्वारा हिन्दु धर्म को हेय दृष्टि से देखा जाता और निन्दा की जाती थी। भारतीयों को लालच देकर धर्म–परिवर्तन कराया जाता रहा है। यह सच है कि उस समय तक भारत में जाति–पाँति, छूआ–छूत, पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह और अनमेल विवाह आदि विकृतियाँ फैल चुकी थीं। विवश और निरीह हिन्दू विजातीय धर्म स्वीकार कर रहे थे। इस विषम क्रियाकलाप की प्रतिक्रिया पर विविध सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों का सूत्रपात हुआ है। एक ओर सामाजिक और धार्मिक विकृतियों को रोकने का प्रयास शुरू हुआ, तो नैतिक मूल्यों को अनुकूल आधार मिला। इस दिशा में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, प्रार्थना सभा, थियोसोफिकल सोसायटी आदि संस्थाओं की भूमिका से समाज में आशा की किरण जगमगाई है। इन संस्थाओं के द्वारा राष्ट्रीय भाव जगाने के लिए हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया गया।

1. ब्रह्म समाज – भारतीय आदर्श और संस्कृति के पुजारी राजा राममोहन राय ने सन् 1828 में कलकत्ते में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। उन्होंने जब ईसाई धर्म–प्रचार से भारतीयों की मानसिकता पर पड़ने वाले प्रभाव को देखा और वे धर्म–परिवर्तन की प्रक्रिया से आन्दोलित हुए तब उन्होंने पुनर्जागरण के लिए 'ब्रह्म समाज' को चिन्तन का केन्द्र बनाया।

   देश में राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक चेतना जगाने में ब्रह्म समाज की अनूठी भूमिका रही है। ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने युगीन संदर्भ में आधुनिक विचार–चिन्तन को स्वीकार किया। उनके व्यक्तित्व में पूर्व और पश्चिम का अनुपम समन्वय था। वे अंग्रेजी को एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में सम्मान देते थे, किंतु राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी के सबल समर्थक थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि भारतवर्ष में राष्ट्रीयता के भाव से सम्पन्न अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता मात्र हिंदी में है। उनकी विद्वता और राष्ट्रीयता का स्पष्ट बोध इससे होता है कि उन्होंने 'बंगदूत' नामक पत्र कलकत्ता से प्रकाशित किया। इसके पत्र में हिंदी, बंगला, अंग्रेजी और फारसी के पृष्ठ हुआ करते थे। वे स्वयं हिंदी में लिखते तथा हिंदी में लिखने के लिए दूसरों को भी प्रोत्साहित करते रहते थे। अहिंदी भाषा क्षेत्र बंगाल में 'ब्रह्म समाज' की भूमिका विशेष सराहनीय रही है। समाज–सुधार और हिंदी–प्रचार में अनेक विद्वान नेता तन–मन से लग गए थे। इस संदर्भ में महर्षि देवेन्द्र नाथ, केशव चन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर और नवीन चन्द्र राय के नाम श्रद्धा से लेते हैं। इस समाज द्वारा अधिकांश पुस्तक हिंदी में प्रकाशित की गई। इस संस्था के सभी सदस्यों से हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने का आह्वान किया गया। नवीन चन्द्र राय ने पंजाब पहुँच कर 1867 में 'ज्ञानप्रदायिनी' पत्रिका निकाल कर हिंदी–आंदोलन को गति दी। भूदेव मुखर्जी ने बिहार की शिक्षा में हिंदी को प्रतिष्ठित किया और वहाँ के न्यायालयों में हिंदी और नागरी लिपि के प्रयोग का मार्ग खोला। उन्होंने अपनी पुस्तक 'आचार–प्रबन्ध' में हिंदी को सर्व उपयोगी गुणसम्पन्न देश की संपर्क भाषा के रूप में अपनाने का आह्वान किया। केशव चन्द्र सेन की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द ने हिंदी में व्याख्यान देना शुरू किया। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिदी में की। सेन ने सन् 1875 में 'सुलभ समाचार' निकालकर उस आंदोलन को अधिक मुख रूप प्रदान किया। उनकी मान्यता थी कि हिंदी देश की सर्वाधिक प्रचलित भाषा है, इसलिए यह भाषा ही राष्ट्रीय एकता का आधार बन सकती है।

2. आर्य समाज– भारतवर्ष के सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों में आर्य समाज का स्थान सर्वोपरि है। आर्य समाज की स्थापना 1875 ई0 में, बम्बई में स्वामी दयानन्द द्वारा समाजोत्थान के लिए की गई थी। आर्य समाज द्वारा पूरे देश में स्वराज, धर्म और हिंदी भाषा के लिए आंदोलन किया गया। आर्य समाज के आन्दोलनकारी हिंदी को 'आर्यभाषा' नाम से संबोधित कर अपना सारा कार्य इसमें ही करते थे। आर्य समाज के 28 नियमों में पाँचवां नियम हिंदी पढ़ना था। आर्य समाज के बढ़ते ही कदम लाहौर पहुँचे और 24 जनवरी, 1877 को लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई। आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिंदी में

ही होता था। इसलि हिंदी–प्रसार को सुन्दर आधार मिला। आर्य समाज द्वारा गुरूकुलों, कन्या–पाठशालाओं और महिला–विद्यालयों की स्थापना की, जिनमें हिंदी की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी। गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम विज्ञान की शिक्षा हिंदी में देने की सफल व्यवस्था की गई। इस विषय में श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति का कथन उद्धरणीय है, ''भारत में पहला शिक्षणालय, जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया, गुरूकुल काँगड़ी था।''

आर्य समाज के द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए हिंदी में अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई। भारत की जनता स्वामी दयानन्द के विचार पढ़ना चाहती थी। इन पत्र–पत्रिकाओं में ऐसे विचार प्रकाशन से हिंदी पर्याप्त लोकप्रिय बनी। स्वामी जी पहले संस्कृत में व्याख्यान देते थे, किंतु कलकत्ता के ब्रह्म समाज के नेता केशव सेन के आग्रह पर उन्होंने हिंदी को अपनाया हैं इस प्रकार हिंदी–प्रसार को लोकप्रिय आधार मिला। स्वामी जी के परम सहयोगी इन्द्रविद्यावाचस्पति ने स्वामी जी के हिंदी–प्रेम के महत्व के विषय में लिखा है –

''महर्षि ने लोक–भाषा को उपदेश का साधन बनाकर न केवल अपने मिलशन को लोकप्रिय और व्यापक बना दिया। भविषय में राष्ट्रभाषा बनाने वाली आर्य को पुष्टि देकर राष्ट्र के स्वाधीनता–भवन की दृढ़ बुनियाद भी रख दी।''

गुजराती भाषा स्वामी जी के हिंदी–प्रेम से उनके अनुयायियों में अनुकरणीय हिंदी प्रेम जगा। श्री राम गोपाल के शब्दों में, ''उनके अनुयायियों के धर्म–प्रचार से जो अधिक उत्तम चीज राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त हुई, वह थी राष्ट्रभाषा का प्रचार।'' आर्य समाज के माध्यम से हिंदी का प्रचार भारत से बाहर मॉरिशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम, ट्रिनीडाड–डुबैगो, युगांडा और लंदन में हुआ। आर्य समाज ने जैसा प्रेकर कार्य सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में किया, इसी प्रकार हिंदी–प्रसार में सर्वोत्तम कार्य किया।

3. सनातन धर्म सभा – ब्रह्मम समाज और आर्य समाज के द्वारा मूर्तिपूजा और बहुदेवतावाद के प्रबल विरोध की प्रतिक्रिया में सन् 1973 में 'सनातन धर्म–रक्षिणी सवभा' की स्थापना हरिद्वार और दिल्ली में की। सन् 1900 में पं0 मदन मोहन मालवीय आदि ने सभा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। सभा का मुख्य उद्देश्य था– हिन्दू धर्म की स्मृतियों और पुराण आदि का शास्त्रों के आधार पर सुधार कार्य। सनातन धर्म की हजारों शाखाएँ भारत वर्ष के विभिन्न प्रान्तों में खुलीं। इस सभा का अधिकांश कार्य संस्कृत और हिंदी–प्रसार को बल मिला। सनातन धर्म सभा के माध्यम से देश के विभिन्न प्रदेशों में शिक्षण संस्थाएँ शुरू हो गई। इनमें हिंदी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। उत्तर–भारत क्षेत्र में इसको आशातीत सफलता मिली। पं0 मदन मोहन मालवीय के प्रिय शिष्य गोस्वामी गणेश दत्त इस सभा के कर्णधार थे। इनका जन्म पंजाब के लायलपुर (पाकिस्तान) में हुआ था। उन्होंने सर्वप्रथम लायलपुर में एक गुरूकुल की स्थापना की। इसमें संस्कृत–हिंदी अध्ययन–अध्यापन व्यवस्था थी। इसके पश्चात् सैंकड़ों संस्थाएँ खुली। इससे पंजाब में हिंदी का व्यापक प्रचार हुआ। गोस्वामी जी ने सन् 1940 में 'विश्वबन्धु' दैनिक समाचार–पत्र का श्रीगणेश किया। भारत विभाजन के बाद इन्होंने अपना कार्यक्षेत्र हरिद्वार बनाया। सन् 1947 में दिल्ली में 'अमर भारत' हिंदी दैनिक का प्रकाशन किया।

गोस्वामी गणेश दत्त के साथ हिंदी प्रसार में योगदान देने वालों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। सनातन धर्म सभा के सतत प्रयास से भारत में मुख्यतः उत्तर भारत में हिंदी जन–मानस की भाषा बनीं।

4. प्रार्थना समाज – भारत वर्ष में सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा में सुधार के लिए महाराष्ट्र में 'परमहंस सभा' की स्थापना सन् 1849 में हुई। ब्रह्म समाज के नेता श्री केशव चन्द्र सेन के बम्बई आगमन पर सन् 1867 में

इस सभा को नया रूप देकर 'प्रार्थना समाज' के आधार पर प्रभावी कार्य शुरू किया गया। इस संस्था द्वारा समाज में व्याप्त जाति–पाति, अछूत और नारी–समस्याओं को दूर करने का सतत् प्रयास किया गया। इस समाज का अधिकांश कार्य हिंदी में किया जाता था। साप्ताहिक प्रवचनों हिंदी–प्रयोग से महाराष्ट्र में हिंदी का प्रेरक परिवेश बना है। इस समाज के सक्रिय नेताओं में न्यायाधीश महादेव गोविंद रानाडे और आर. जी. भण्डारकर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। गोविंद रानाडे ने हिंदी और नागरी लिपि के प्रयोग और प्रसार का सतत् प्रयास किया है। निश्चय ही हिंदी प्रसार आंदोलन में प्रार्थना समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

5. थियोसाफिकल सोसायटी – इस सोसायटी की स्थापना भारतीय दर्शन और संस्कृति के प्रभाव से 'विश्व–बन्धुत्व' भाव जगाने हेतु सन् 1875 में अमेरिका में हुई। इसके संस्थापक मदाम ब्लावत्स्की और कर्नल आलकोट थे। सन् 1897 में इसका मुख्य कार्यालय मुम्बई में स्थापित किया गया। इस संस्था पर आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद का विशेष प्रभाव पड़ा। इस संस्था ने स्वामी जी को अध्यात्म गुरू भी माना है। इसके उद्देश्य ब्रह्म समाज और आर्य समाज से बहुत कुछ मेल खाते हैं। सन् 1893 में श्रीमती एनी बेसेंट ने इस संस्था का नेतृत्व अपने हाथों में लिया। उन्होंने सन् 1898 में काशी में सेंट्रल हिंदू कॉलेज और हिंदू कन्या विद्यालय की स्थापना की। इसके साथ ही देश के विभिन्न प्रांतों में शिक्षण संस्थाएँ खोलीं। इन विद्यालयों और महाविद्यालयों में भारतीय संस्कृति की शिक्षा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में दी जाती थी। इस सोसायटी पर अंग्रेजी का भी प्रभाव दिखाई देता है, किंतु इनकी जो भी प्रचारादि सामग्री छपती, वह अंग्रेजी के साथ हिंदी में भी होती थी। इस प्रकार हिन्दी–प्रसार को सुअवसर मिला। स्वाधीनता संग्राम के प्रति विशेष लगाव होने के कारण सन् 1918 से सन् 1921 तक इन्होंने दक्षिणी भारत में घूम–घूमकर हिंदी का प्रचार किया था। उन्होंने हिंदी का महत्त्व अपनी पुस्तक 'नेशन बिल्डिंग' में लिखा है– ''हिंदी जानने वाला आदमी संपूर्ण भारत में यात्रा कर सकता है और उसे हर जगह हिंदी बोलने वाले मनुष्य मिल सकते हैं। हिंदी सीखने का कार्य ऐसा त्याग है, जिसे दक्षिणी भारत के निवासियों को राष्ट्र की एकता के हित में करना चाहिए।

श्रीमती एनी बेसेंट ने सन् 1928 में मद्रास (चेन्नई) में हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हिंदी–संदर्भ में प्रेरक वक्तव्य दिया था– ''मेरा विश्वास है कि हिंदी भारत वर्ष की मुख्य (संपर्क) भाषा होगी। मेरा विचार है कि भारतवर्ष की शिक्षा में हिंदी अनिवार्य होनी चाहिए।'' इस प्रकार के विचारों और गतिविधियों से हिंदी–प्रसार को अनुकूल दिशा मिली है।

(आ) साहित्यिक संस्थाएँ –भारतवर्ष एक लंबे समय तक दासता की बेड़ी में जकड़ा रहा। हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु समय–समय पर अनेक साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना होती रहती है। राष्ट्रीय भाव जगाने और हिंदी के प्रचार–प्रसार में इन संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है। इनमें कुछ संस्थाओं का उल्लेख किया जा रहा है –

1. भारतेन्दु मण्डल – आधुनिक हिंदी साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने साहित्यकारों का एक मण्डल बनाया था। यह मण्डल हिंदी साहित्य के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन का अभिलाषी था। मण्डल के सदस्यों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की, पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। भारतेन्दु हरीशचन्द्र ने हिंदी पर व्याख्यान देते हुए कहा था–

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।''

भारतेन्दु मण्डल की गतिविधियों से सामाजिक क्षेत्र में जागकरण का परिवेश बना, तो स्वदेशी आंदोलन को प्रभावी आधार मिला है। हिन्दी–प्रेम के कारण जन–सामान्य में हिंदी लोकप्रिय हुई। भारतेन्दु हरीशचन्द्र के

साथ इस मंडल के सक्रिय सदस्य थे– पं0 प्रताप नारायण मिश्र, पं0 बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी, श्रीनिवास दास, बालमुकुंद गुप्त, रमाशंकर व्यास और तोताराम आदि।

2. नगरी प्रचारिणी सभा, काशी– इस सभा की स्थापना 10 मार्च, 1983 में हुई। इस संस्था को संरक्षक के रूप में बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री गोपाल प्रसाद खत्री ओर पं0 राम नारायण मिश्र आदि का आर्शीवाद मिला। इस संस्था से अन्य जुड़ने वाले गणमान्य विद्वानों में महामना मदन मोहन मालवीय, श्रीधर पाठक, श्री अम्बिका दत्त व्यास, श्री राधाचरण गोस्वामी और बदरी नारायण चौधरी आदि प्रमुख हैं। कोश–रचना, हिंदी साहित्य के इतिहास–लेखन, हस्तलिखित ग्रंथों की खोज और संगोष्ठी आयोजन में यह संस्था देश में शीर्ष स्थान पर है।

कामता प्रसाद गुरु रचित 'हिंदी व्याकरण' पं0 किशोरी वाजपेयी कृत 'हिंदी शब्दानुशासन' के अतिरिक्त 'हिंदी शब्दसागर', 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास' आदि के दुर्लभ और महत्वपूर्ण प्रकाशन से इस संस्था को हिंदी–विकास में विशेष महत्त्व मिला है। 'नागरी प्रचारिणी' शोध–पत्रिका का लगभग सौ वर्षो का गरिमामय इतिहास इस संस्था की गौरव गाथा का स्वरूप है। इस संस्था ने नागरी लिपि के सुधार, आशुलिपि (शार्टहैंड) और टंकण (टाइप) संदर्भ में अनुकरणीय पहल की है। नागरी प्रचारिणी सभा का लगभग सौ वर्षों का इतिहास हिंदी प्रचार–प्रसार के श्रेष्ठ और प्रेरक संदर्भ को प्रस्तुत करता है। यह सभा आज भी हिंदी के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में लगी है।

3. हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – सम्मेलन हिंदी प्रचार–प्रसार की सर्व–प्रमुख साहित्यिक संस्था है। सन् 1910 में सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हुआ। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इसी समय न्यायालय में हिन्दी और देवनागरी प्रयोग पर बल दिया। सम्मेलन द्वारा हिंदी प्रचार–प्रसार और हिंदी–विकास के लिए नियम बनाए गए। इनमें प्रमुख थे – राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रलिपि देवनागरी का प्रचार, हिंदी भाषी प्रदेशों की शिक्षण संस्थाओं के साथ न्यायालयों में हिंदी का प्रयोग, देवनागरी में छपाई की समुचित व्यवस्था, हिंदी साहित्य की विविध विधाओं का विकास, हिंदी विद्वानों और साहित्यकारों का सम्मान और हिंदी प्रचार–प्रसार हेतु हिंदी की उच्च परीक्षाओं का आयोजन।

सम्मेलन द्वारा उक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सतत् प्रयत्न किया जाता रहा है। सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन अर्थात् सन् 1913 से हिंदी के व्यापक प्रचार हेतु प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा आदि परीक्षाओं का आयोजन शुरू हुआ। सम्मेलन की त्रैमासिक 'सम्मेलन पत्रिका' शोधपरक और अन्वेषणात्मक आलेखों के आधार पर सतत् प्रकाशित होती रही हैं। 'राष्ट्रीााषा संदेश' पत्र भी हिंदी प्रचार–प्रसार की आकर्षक भूमिका में हैं। हिंदी का चर्चित शब्दकोश 'मानक हिंदीकरण' पाँच खण्डों में प्रकाशित करना गरिमा का विषय है। सन् 1963 में भारत सरकार के द्वारा लोक सभा में एक विशेष स्वीकृति कर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' को राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था के रूप में मान्यता दी गई है। इस प्रकार हिंदी प्रचार–प्रसार में सम्मेलन का सर्वोपरि महत्त्व है।

4. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास– महात्मा गाँधी ने हिंदी सम्मेलन के सन् 1918 के इन्दौर के अधिवेशन में दक्षिण में हिंदी प्रचार की योजना बनाई। उनके पुत्र श्री देवदास गाँधी दक्षिण भारत में प्रथम हिंदी प्रचारक के रूप में गए। दक्षिण भारत में प्रचारार्थ श्री सत्यदेव परिव्राजक आदि वहाँ पहुँचे। वहाँ प्रारंभ में हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से प्रचार हुआ। सन् 1927 में इसे दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास नाम दिया गया। इसके संस्थापकों में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सभा के द्वारा दक्षिण के प्रांतों में हिंदी का प्रेरक प्रचार किया गया। हिंदी भाषा के प्रचारार्थ प्रवेशिका विशारद्, पूर्वार्द्ध, विशारद् उत्तरार्द्ध, प्रवीण तथा हिंदी प्रचारक आदि परीक्षाओं का संचालन किया जाता है। सभा की प्रवेशिका, विशारद् और प्रवणी परीक्षाओं को केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा मान्यता मिली है। यहाँ से मासिक 'हिन्दी प्रचार समाचार' और 'दक्षिणी भारत' द्विमासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है। केन्द्र सरकार ने सभा को श्रेष्ठ हिंदी प्रचारक मानकर राष्ट्रीय महत्व प्रदान किया है।

5. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा – हिंदी साहित्य सम्मेलन का 25वाँ अधिवेशन सन् 1936 में नागपुर में हुआ। डॉ0 राजेन्द्र प्रसार सम्मेलन के अध्यक्ष थे। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रस्तावानुसार दक्षिण में हिंदी प्रचारार्थ 'हिन्दी प्रचार समिति' का गठन किया गया। इसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में वर्धा में हुआ। काका कालेलकर के सुझाव पर इसका नाम बदल कर 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया। इस समिति का मुख्य उद्देश्य हिंदी–प्रचार था और इसी आधार पर समिति मानती थी 'एक हृदय हो भारत जननी' समिति ने हिंदी प्रचार–प्रसार के लिए सन् 1938 से अपनी परीक्षाओं का संचालन शुरू किया। समिति ने जुलाई 1943 से 'राष्ट्रभाषा' मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसके पश्चात् 'राष्ट्रभारती' पत्रिका का प्रकाशन किया गया। इस समिति के देश से बाहर लंका, स्याम, सुमात्रा, मॉरिशस, इंग्लैंड आदि देशों में केन्द्र हैं।

    समिति सम्मान और पुरस्कार से भी हिन्दी प्रचार–प्रसार को दिशा प्रदान करती है। इस समिति की गतिविधियों से हिन्दी को विशेष बल मिला है। इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; हिंदी विद्यापीठ, मुम्बई; महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना और बिहार राष्ट्रभाषा, पटना आदि की हिंदी प्रचार–प्रसार भूमिका उल्लेखनीय है।

4.4 नागरी लिपि का नामकरण और विकास

भाषा का प्रारंभिक रूप संकेत भाषा है, तो लिपि का प्रारंभिक रूप चित्रात्मक रहा है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भारत की प्राचीनतम लिपि सिंध घाटी से प्राप्त लिपि है। सिंध क्षेत्र के मोहनजोदड़ों और पाकिस्तान के हड़प्पा से मिले सिक्कों में प्राचीन लिपि के संकेत मिलते है।। इन लिपि–चिह्नों के विकास का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है।

ब्राह्मी भारतीय की प्राचीनतम लिपि है। इसका प्राप्त प्राचीनतम रूप ई0 पूर्व 500वीं शताब्दी का हैं इसका प्राचीनतम रूप उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के पिपरावा के स्तूप में मिलता है। ब्राह्मी लिपि का प्रयोग ई0 पूर्व, 500वीं शताब्दी से तीसरी शताब्दी तक होता रहा है। इसके पश्चात् गुप्त लिपि का उद्भव हुआ। गुप्त लिपि 200 वर्षों तक प्रयुक्त होने के पश्चात् कुटिल रूप का प्रयोग 8वीं शताब्दी तक होता रहा है। नौंवी शताब्दी में प्राचीन देवनागरी का रूप सामने आया है। भारत के अनेक लिपियाँ प्राचीन नागरी लिपि से विकसित हुई है। अध्ययन की सुविधा के लिए प्राचीन नागरी को दो भागों में विभक्त कर अध्ययन किया जा सकता है।

प्राचीन नागरी

पूर्वी भाग	पश्चिमी भाग
मैथिली, बंगला, उड़िया	देवनागरी, गुजराती, महाजीन, राजस्थानी, मराठी

नागरी का वास्तविक विकास अभी खोज का विषय है। वैसे प्रारंभिक प्राप्त रूप गुजरात के नरेश जयभट्ट (700–800 ई0)के शिलालेख में मिलता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस लिपि का प्रारंभिक विकास गुजरात और कोंकण में हुआ। इसके पश्चात् उत्तर भारत में हुआ। यह मान्यता उचित नहीं, क्योंकि उत्तर भारत से प्राप्त तथ्यों से नागरी के उत्तर भारत में विकसित होने के तथ्य मिलते हैं।

दसवीं शताब्दी से 15वीं शदी तक नागरी चिह्नों में विशेष सुधार चलता रहा है। यह परिवर्तन मुख्यतः सरल और सुंदर बनाने के प्रयत्न से हुआ है। दसवीं शती के प्रारंभिक रूप जाइक देव के समय के मिले मोरबी के दान–पत्रों, नेपाली में मिले हस्तलिखित ग्रंथों में देख सकते हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के पश्चात् विकसित रूप नागरी के वर्तमान चिह्नों से बहुत कुछ मेल खाते हैं। नागरी के सतत् विकसित रूप में रेखांकन योग्य कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. लिपि चिह्नों को सरल और सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है।
2. लिपि–चिह्नों में स्पष्टता लाने का प्रयत्न दिखाई देता है।
3. लिपि–चिह्नों में आकर्षक और व्यवस्थित रूप देने के लिए शिरोरेखा लगाने का प्रयत्न स्पष्ट होता है।
4. लिपि–चिह्नों में स्पष्ट लेखन के साथ त्वरा–लेखन–गुण विकसित करने का प्रयत्न किया गया है।

नागरी लिपि के विकास अध्ययन में विभिनन शिलालेखों, भोज–पत्र के लेखों, सिक्कों, पत्रों और हस्तलिखित ग्रंथों का सहयोग लिया गया है। इनमें प्रयुक्त नागरी के लिपि–चिह्नों से उनके क्रमिक विकास का ज्ञान होता है। नागरी चिह्नों के विकास को प्रस्तुत करने के लिए कुछ एक चिह्नों का विकास क्रम प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

(अ)– यह नागरी का अर्थ विवृत मध्य स्वर है। दसवीं शताब्दी में इसका रूप राजा जाइक देव काली मोरबी से मिले दानपत्र में मिलता है। ग्यारहवीं शती में लगभग मिलता–जुलता चिह्न धार से मिले राजा भोज के कर्मशतक में है। बारहवीं शती के हैहय वंशी राजा जाजाल्देव के लेख में और तेरहवीं शती का रूप आबू के परमार का राता के औरिया के लेख में मिलता है। इसके पश्चात् इसमें सरलीकृत और सुन्दर रूप का विकास हुआ है।

(ह)– नागरी वर्णमाला का अंतिम वर्ण है। इसका प्रारंभिक रूप ई0 पूर्व तीसरी शती के अशोक के गिरनार के लेख में मिलता है। नागरी का यह चिह्न सर्वप्रथम दसवीं शताब्दी के मोरबी से मिले राजा जाइक देव के दानपत्र में प्राप्त हुआ। तेरहवीं शती में आबू के परमार राजा धारावर्ष के समय के लेख में इसका विकसित रूप मिलता है। इसके बाद नागरी का वर्तमान 'ह' चिह्न विकसित हुआ है।

किसी भी लिपि के दो मुख्य भाग होते हैं– प्रथम, वर्ण और द्वितीय अंक। नागरी के अंकों का विकास भी शिलालेखों, पत्रों और हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर दर्शाया जा सकता है; यथा– (एक) ब्राह्मी में इसका रूप छोटी पाई–लगभग योजक चिह्न के समान '–' प्रयोग होता था। गुप्तकाल तक यही रूप प्रयुक्त होता रहा है। नौवीं शताब्दी में यह रूप घुमाकर नीचे की ओर कर दिया गया। दसवीं शताब्दी में इसके उपरी सिरे को घुण्डीदार बनाने का प्रयत्न किया गया है। यह रूप दसवीं शती के चालुक्य मूलराज के दानपत्र में देखा जा सकता है। इसके पश्चात् उपर के भाग को पूर्णरूपेण घुण्डीदार बनाकर सुंदर बनाया गया है। अंकों के विकास में किसी न किसी अंश में घुण्डीदार रूप अवश्य विकसित हुआ है। नागरी वर्णों में शिरोरेखा का सतत् विकास और चिह्नों में गोलांश या घुण्डीदार रूप–विकास इनकी रेखांकर योग्य विशेषता है।

प्रतिनिधि वर्ण–अंक–चिह्न का विकास

10वी शती	13वीं शती	15वीं शती	17वीं शती	21वीं शती
अ–ग्र	अ	अ	अ	अ
ह्	ह	ह	ह	ह

अंक

1	1	1	1	1

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत की प्राचीनता लिपि ब्राह्मी से क्रमशः विकसित होती विभिन्न लिपियों के क्रम में नौवीं शताब्दी में प्राचीन नागरी का रूप सामने आया है। इसके पश्चात् नागरी का विकास हुआ है। नागरी लिपि के चिह्नों को उस समय से लगातार सरल, सुंदर और वैज्ञानिक रूप प्रदान करने के प्रयत्न से वर्तमान रूप सामने आया है। वर्तमान समय में प्रयुक्त नागरी लिपि किसी भी अन्य लिपि से कहीं अधिक वैज्ञानिक है।

4.5 नागरी लिपि की वैज्ञानिकता

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा की लिपि देवनागरी है। संवैधानिक रूप में नागरी को राजलिपि का पद प्राप्त है। विश्व की कोई भी वर्णमाला नागरी के समान सर्वांगीण और वैज्ञानिक नहीं है। माना सभी को अन्य वस्तुओं की भाँति अपनी भाषा तथा लिपि ही अच्छी लगती है, किंतु नागरी की वैज्ञानिकता को कोई भी विद्वान अस्वीकार नहीं कर सकता है। यदि भारतवर्ष की सभी भाषाओं को नागरी लिपि में भी लिखा जाए, तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाएगी। इस लिपि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

चिह्न संख्या

कहा जाता है कि, नागरी में चिह्नों की संख्या बहुत अधिक है, रोमन में मात्र 26 चिह्न हैं। विचार करने पर नागरी में स्वर–लगभग 10, मात्रा–लगभग 1, व्यंजन–33 अर्थात् 52 चिह्न हैं। अंग्रेजी में छोटे+बड़े अक्षर अर्थात् 26+26 = 2.2 चिह्न हैं। इस प्रकार नागरी के चिह्नों को अधिक कहना तर्क संगत नहीं है। इनकी संख्या अनुकूल है।

आदर्श वर्गीकरण

नागरी वर्णमाला का वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक है। नागरी वर्णमाला को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया गया है। स्वर तथा व्यंजन। स्वर को प्रारंभ में तथा व्यंजन को बाद में स्थान दिया गया है।

स्वर – जिन वर्णों का उच्चारण किसी अन्य वर्ण की सहायता के बिना किया जा सके और मुख–विवर से हवा अबोध गति से बाहर निकले, उन्हें स्वर की संज्ञा दी जाती है; यथा–अ, इ, ई, उ, ऊ आदि।

व्यंजन – जिन संकेतों (वर्णों) का उच्चारण स्वर की सहायता के बिना न किया जा सके तथा उच्चारण में हवा गति में मुख–विवर में न निकल सके, ऐसी ध्वनि के उच्चारण के समय हवा का घर्षण करती हुई संकीण्र मार्ग से निकलती है। इस प्रकार मार्ग में वायु का पूर्ण या अपूर्ण अवरोध होता है, ऐसे वर्णों को व्यंजन की संज्ञा दी जाती है; यथा–क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ आदि।

(क) स्वर वर्गीकरण : स्वर वर्णों की व्यवस्था अपने में पर्याप्त वैज्ञानिक है।

1. मात्रानुसार–नागरी के स्वरों के ह्रास्व, दीर्घ तथा लुप्त रूपों की व्यवस्था द्रष्टव्य है –

(क) ह्रस्व–जिन स्वरों के उच्चारण में अपेक्षाकृत सीमित समय लगता है; जैसे–अ, इ, उ।

(ख) दीर्घ–जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्व से लगभग दूना समय लगता है, जैसे–आ, ई, उ।

(ग) प्लुत–जिन स्वरों के उच्चारण में दीर्घ स्वर से भी अधिक समय लगता है, ह्रस्व से लगभग तीन गुना समय लगे; जैसे –ओउम् में ओऽ।

2. आकृति के अनुसार– स्वरों की आकृति के अनुसार की गई व्यवस्था महत्वपूर्ण है।

   (क) मूल स्वर – जिन संकेतों में मात्र एक स्वर होता है; यथा– अ, इ, उ।

   (ख) संयुक्त स्वर – जिन संकेतों में मात्र एक स्वर हों; यथा– ए = अ+इ, ऐ = अ+ई, ओ = अ+उ, औ = अ + ऊ।

(ख) व्यंजन–वर्गीकरण

1. वर्ग–विभाजन – नागरी में 55 व्यंजनों के वर्ग की पूर्ण वैज्ञानिक व्यवस्था है– कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तथा पवर्ग में क्रमशः कण्ठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, दन्तय तथा ओष्ठ्य लिपि चिह्न।

   (क) कवर्ग– इस वर्ग की व्यंजन ध्वनियाँ जीभ के चिह्न भाग से उच्चारित होती हैं। इसलिए इन्हें कण्ठ्य ध्वनि–चिह्न कहते हैं; यथा– क, ख, ग आदि।

   (ख) चवर्ग– इस (तालव्य) वर्ग की व्यंजन–ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक से कठोर तालु पर झटके से मिलने से होता है; यथा– च, छ आदि।

   (ग) टवर्ग – इस (मूर्द्धन्य) वर्ग के व्यंजन–चिह्नों का उच्चारण मूर्द्धा की सहायता से होता है; यथा– ट, ठ, ड, ढ, ण आदि।

   (घ) तवर्ग– इस (दन्त्य) वर्ग की व्यंजन–ध्वनियों का उच्चारण दाँत के साथ जीभ की नोक के मिलने से होता है; यथा – त, थ, द आदि।

   (ङ) पवर्ग – इस (ओष्ठ्य) वर्ग की व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण दोनों ओठों की सहायता से होता है; उदाहरणार्थ– प, फ, ब, भ, म।

2. प्राणत्व–आधार : व्यंजन वर्णों के उच्चारण–संदर्भ में निकलने वाली हवा को ध्यान में रखकर की गई लिपि–चिह्नों की व्यवस्था उत्तम कोटि की है।

   (क) महाप्राण–जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा का प्रवाह तीव्र हो तथा हकारत्व विद्यमान हो। प्रत्येक वर्ग की द्वितीय तथा चतुर्थ ध्वनियाँ –

   कवर्ग – ख, (Kh), घ (gh), चवर्ग– छ (Chh), झ (Jh)

   टवर्ग – ठ (Th), ढ (Dh), तवर्ग – थ (Th) ध (Dh)

   पवर्ग – फ (Ph), भ (Bh)

   (ख) अल्पप्राण–जिन व्यंजनों ध्वनियों के उच्चारण में हवा का प्रवाह मंद हो तथा हकारत्व का अन्त न हो। प्रत्येक वर्ग की प्रथम, तृतीय तथा पंचम व्यंजन ध्वनियाँ –

   कवर्ग–क, ग, ड़, चवर्ग– च, ज, झ, त्र

   टवर्ग – ट, ड, ण तवर्ग – त, द, न

   पवर्ग – प, ब, म

3. नासिक्य–आधार : जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा मुख्यतः नाक से निकले, उन्हें नासिक्य व्यंजन कहते हैं। नागरी लिपि के प्रत्येक व्यंजन वर्ग में अनुनासिक व्यंजन को अंत में पाँचवें स्थान पर व्यवस्थित किया है; यथा– क, च, ट, त और पवर्ग के क्रमश नासिक्य ध्वनि–चिह्न हैं–ङ, ण, न, म।

4. संयुक्तानुसार : नागरी वर्णमाला में सामान्य रूप से सरल व्यंजनों को स्थान दिया गया है– संयुक्त व्यंजन वर्णमाला में नहीं है। प्रयोग आव यक होने पर संयुक्त और द्वित्व रूप बना लेते हैं; यथा–

   (क) सरल व्यंजन–क, ख, च, त आदि।

   (ख) संयुक्त व्यंजन – क्ष (क्ष), त्र (त्र), ज्ञ (जत्र)

   (ग) द्वित्व व्यंजन – क्क, त्त, द्द, (पक्का, रत्ती, भद्दा) आदि।

लिपि–संकेत नाम तथा ध्वनि–अनुरूपता

नागरी लिपि के वर्णों की यह प्रमुख विशेषता है कि वर्णों के नाम के ही अनुरूप शब्दों में उनका भी उच्चारण होता है, यथा–क–चकोर, त–तमाल आदि।

इस प्रकार नागरी वर्ण–ज्ञान होने पर किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण संभव है। रोमन लिपि में यह गुण नहीं है। रोमन के संकेतों की ध्वनियों शब्दों में प्रयुक्त होकर कुछ से कुछ हो जाती है। प्रत्येक लिपि–संकेत के साथ शब्दों में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि को याद करना पड़ता हैं रोमन में इस संदर्भ की अनेकरूपता दिखाई पड़ती है।

(क) अंग्रेजी के कुछ शब्दों के उच्चारण में कुछ लिपि–संकेतों के नाम की मात्र प्रथम ध्वनि का प्रयोग होता है; यथा – B (बी) 'ब'– Bag (बैग), D (डी) 'ड'– Date (डेट), K (के) 'क' Kite (काइट)।

(ख) अंग्रेजी के कुछ शब्दों में लिपि–संकेतों के नाम की दूसरी ध्वनि का प्रयोग किया जाता है; यथा– F (एफ) 'फ' (Fan) , L (एल) 'ल' Lame (लेम), M (एम) 'म' Man (मैन)।

(ग) अंग्रेजी के कुछ शब्दों में लिपि संकेतों के किसी भी ध्वनि का प्रयोग नहीं होता है; यथा– C (सी) 'क' Cat (कैट), (एवं) ह H (हाउस), 'अ' Hour (आवर)।

एक ध्वनि के लिए एक लिपि–संकेत

नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है कि लगभग प्रत्येक ध्वनि के लिए एक संकेत का प्रयोग होता है। रोमन में यह गुण न्यून है। इसमें एक ध्वनि के लिए एक से अधिक संकेतों का प्रयोग होता है; यथा–

क	>	K	(के)	–	Kite	काइट	(पतंग)
	<	Ch	(सी एच)	–	Chemistry	कैमेस्ट्रि	(रसायन विज्ञान)
	>	C	(सी)	–	Coat	कोट	(कोट)
	>	Ck	(सी के)	–	Back	बैक	(पीछे)
	>	Que	(क्यू–यू–ई)	–	Cheque	चैक	(हुंडी)
X	X		(एक्स)	–	Fox	फॉक्स	(लोमड़ी)

इस प्रकार 'फ' के लए F (Fan] Ph (Photo), Gh (Rough) का प्रयोग होता है, तो 'इ' के लिए I (Tin), O (Women), Y (System) आदि संकेत प्रयुक्त होते हैं।

एक लिपि संकेत के लिए एक ध्वनि

एक लिपि–संकेत के लिए एक ध्वनि का होना वैज्ञानिकता है। नागरी लिपि के किसी वर्ण को शब्द के आदि, मध्य अथवा अंत कहीं भी प्रयोग करें, ध्वनि एक ही हाती है। हिंदी में कुछ एक अपवाद मिल सकते हैं, तो रोमन लिपि में

यह कमी बहुत खटती है–

A	(ए)	अ	>	Affirm	(अफ्फर्म)	–	निश्चयपूर्वक कहना
		आ	>	Car	(कार)	–	कार
		ए	>	Rate	(रेट)	–	नियत मूल्य
		ऐ	>	At	(ऐट)	–	पर

इसी प्रकार (यू) का उच्चारण अ (Cut), उ (Put), यू (Unit) आदि रूपों में होता है।

व्यंजन की आक्षरिकता

नागरी लिपि के सभी व्यंजनों के साथ स्वर अ का उच्चारण होता है। यह गुण व्यंजनों की आक्षरिकता कहलाता है। च = च् +अ, त = त् +अ आदि।

इस प्रकार आक्षरिक रूप में लेखन में त्वरा आती है। साथ ही साथ समय तथा स्थान की भी बचत होती है। रोमन लिपि के वर्णों में यह गुण नहीं है, जिसके कारण समय अपेक्षाकृत अधिक लगता है, यथा–कमल KAMALA रमन– RAMANA, छम छम– CHHAMA CHHAMA **मात्रा का प्रयोग**

नागरी लिपि के स्वरों का कभी स्वतंत्र रूप में प्रयोग होता है, तो कभी उनके मात्रा संकेतों का। स्वरों के स्वतंत्र प्रयोग में किसी अन्य लिपि–संकेतों का सहारा नहीं लेना पड़ता है; यथा–अ–अपनी, इ–इधर, उ–उधर आदि।

जब स्वर के स्थान पर उनकी मात्राओं का प्रयोग किया जाता है, तो लेखन का मूलाधार व्यंजन होता है; यथा– आ माता, इ > ि–लिपि, उ > ु कुछ उ ू कुछ, उ > ू मूल आदि।

यदि मात्रा प्रयोग की व्यवस्था न होती तो स्थान एवं समय अधिक लगने से लेखन में त्वरा संभव न होता। ऐसे में लेख का रूप इस प्रकार होता–माता = म् आ त् आ, लिपि = ल् इ प् इ, कुछ + क् उ ृ छ् अ्

ऐसी वैज्ञानिकता रोमल लिपि में नहीं है। स्वरों के मात्रा रूप के अभाव होने से उनका स्वतंत्र रूप में ही प्रयोग होता है; यथा– पतन PATANA, कमल KAMALA आदि।

ह्रस्व–दीर्घ स्वरों के लिए स्वतंत्र लिपि–संकेत

वर्ण का ही प्रयोग होता है, जिसके कारण ऐसी ही विषम स्थिति होती है, यथा –

यह नागरी की प्रमुख वैज्ञानिकता है। रोमन लिपि में यह गुण आंशिक रूप में भी नहीं है। नागरी लिपि में भी नहीं है। नागरी लिपि में स्वर के दो रूप हैं– ह्रस्व तथा दीर्घ; यथा–

ह्रस्व स्वर – आ, इ, उ आदि।

दीर्घ स्वर – आ, ई, उ आदि।

इस प्रकार स्वर के ह्रस्व तथा दीर्घ, दो रूपों से ध्वनियों का अधिक शुद्ध उच्चारण और लिपिबद्ध करना संभव है; यथा –

रम, रमा, रामा।

लत, लता, लात, लाता।

ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर ध्वनियों के दो रूप से उक्त लेखन संभव है, अन्यथा रम, रमा, राम, रामा के लिए एक ही रूप

होता। रोमन में 'अ' तथा 'आ' स्वर ध्वनियों के लिए सामान्यतः 'A' वर्ण का ही प्रयोग होता है, जिसके कारण ऐसी ही विषम स्थिति होती है; यथा –

RAMA = रम, रमा, राम, रामा।

LATA = लत, लता, लात, लाता।

पर्याप्त लिपि–चिह्न

वैज्ञानिक लिपि में संबंधित भाषा की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त संकेतों का होना आवश्यक होता है। नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है। रोमन लिपि द्वारा अंग्रेजी की भी ध्वनियों का लिपिबद्ध करना अत्यन्त कठिन है। रोमन लिपि में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतंत्र लिपि संकेत नहीं है। इनको लिपिबद्ध करने के लिए अल्पप्राण ध्वनि के साथ 'H' का प्रयोग किया जाता है; यथा – ख KH, घ GH, ठ TH, फ PH अंग्रेजी में लिपि–संकेतों की अपर्याप्तता के कारण पढ़ने में आने वाली समस्याएँ द्रष्टव्य हैं– AGHAN> अगहन, अघन।

रोमन लिपि की इस कमी के कारण एक ही शब्द में अनेक शब्दों के संदेह की समस्या इसकी वैज्ञानिकता और पुष्ट होती है। इन विशेषताओं को देखते हुए नागरी लिपि के रूप में प्रयोग करना चाहिए, इससे राष्ट्रीय एकता भी सुदृढ़ होगी।

नागरी लिपि का मानकीकरण

देवनागरी लिपि विश्व की अनेक लिपियों से अधिक वैज्ञानिक हैं नागरी को सर्वगुण या पूर्ण लिपि बनाने के लिए इसमें कुछ सुधार आवश्यक हैं। वर्तमान समय में नागरी लिपि की कुछ समस्याएँ हैं, जिनका सुधार अपेक्षित है।

समस्याएँ

एक वर्ण के लिए एक से अधिक संकेत – देवनागरी में कुछ ऐसे वर्ण हैं जिनके लिए एक से अधिक संकेतों का प्रयोग होता है; यथा –

(क) 'र' के लिए चार संकेतों का प्रयोग – र = र, ्र, ^, र्‍ रमा, क्रम, ट्रक, धर्म।

(ख) एक वर्ण के लिए दो शब्दों का प्रयोग–अ–त्र्प, छ–द्द, झ–भ ल–ल, ण–सा, श–श आदि।

(ग) एक अंग के लिए दो या दो से अधिक संकेतों का प्रयोग।

चार संकेतों का प्रयोग नौ – 9 ....

तीन संकेतों का प्रयोग छः – 6 ....

दो संकेतों का प्रयोग आठ – 8 ....?

दो लिपि–चिह्नों के भ्रामक प्रयोग – ख–रव, घ–ध, भ–म, रा (र+आ)– रा (आधा रा)। यह शिरोरेखा विहीन लेखन या त्वरित लेखन में होती है।

संयुक्त वर्णों का प्रयोग – क्ष, त्र, ज्ञ, द्य, द्ध, क्त, झ आदि।

लिपि–संकेतों की अपर्याप्तता– ख, ग, ज, फ आदि का प्रभाव।

'इ' की मात्रा के प्रयोग की समस्या।

व्यंजनों की आक्षरिकता सभी मूल व्यंजनों में आकार का होना।

शिरोरेखा और पूर्ण विराम–चिह्नों का प्रयोग–विवाद।

समाधान या सुधार–सिद्धान्त

लिपि––सुधार के समय उससे सम्बन्धित मूलभूत सिद्धांतों पर विचार करना आवश्यक है; जो अग्रलिखित हैं –

आवश्यकतानुसार कम से कम परिवर्तन,

एक ध्वनि के लिए एक संकेत–प्रयोग,

एक लिपि–संकेत के लिए एक ध्वनि–प्रयोग

लिपि संकेतों की पर्याप्तता,

लेखन एकरूपता,

लिपि में त्वरित लेखन–गुण

उच्चारणनुसार लेखन,

लेखन–सरलता,

लेखन, टंकण और मुद्रण में एकरूपता।

सुधार–इतिहास

मानव का सम्पर्क दिन–प्रतिदिन देश से विदेश की ओर बढ़ता जा रहा है। देवनागरी को पूर्ण वैज्ञानिक लिपि बनाने के लिए इस शताब्दी में कुछ व्यक्तियों, संस्थाओं और राज्यों एवं केन्द्र सरकारों द्वारा लगातार प्रयत्न किए गए हैं। इस संदर्भ में किए गए कुछ प्रयास इस प्रकार हैं –

(क) प्रारंभिक सुधार – नागरी लिपि के प्रथम सुधारकर्ता के रूप में बम्बई के महादेव गोविन्द रानाडे का नाम लिया जाता है। इसके पश्चात् महाराष्ट्र साहित्य परिषद्, पुणे के द्वारा एक लिपि–सुधार समिति नियुक्त की गई। मराठी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में इस संदर्भ का प्रस्ताव पास किया गया। सावरकर ने 'अ' को मूल स्वर मानकर इसी से अन्य स्वरों की कल्पना की थी; यथा – इ अि, ई अी, उ अु, ऊ अू, ए अे आदि। इस संदर्भ में महात्मा गांधी, विनोबा भावे कालेलकर आदि ने सराहनीय कार्य किया है। इस सुधार–प्रयास को पूर्ण स्वीकृति न मिल सकी। इसका मुख्य कारण था– एक अनुतरित प्रश्न कि ये मात्राएँ जो 'अ' में लगाकर इ, उ आदि बनती हैं, वे इ, उ आदि के अस्तित्व के बिना आई कहाँ से?

नागरी लिपि–संकेतों से शिरोरेखा हटाने का भी सुझाव दिया गया है। उसी समय से गुजराती लिपि से शिरारेखाविहीन लेखन की परंपरा चली आ रही है। इस समय लिप–सुधार संदर्भ में कार्य करने वाले अन्य विद्वान थे–केशवराम, काशीप्रसाद शास्त्री, गोरख प्रसाद और श्रीनिवास आदि।

(ख) हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयास के तत्वाधान में 1935 में महात्मा गांधी के सभापतित्व में हुए अधिवेशन में एक नागरी लिपि सुधार–समिति का गठन किया गया है, जिसकी बैठक 5 अक्तूबर, 1941 को हुई। इसमें निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए गए –

1. शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है।
2. प्रत्येक वर्ण तथा मात्रा उच्चारण क्रम में लिखे; यथा–चुप > च ु प, मेल > म े ल आदि।
3. 'इ' की मात्रा 'ि' के भ्रामक प्रयोग से बचने के लिए 'इ' और 'ई' की मात्राओं में परिवर्तन करके मात्र ि के नीचे भाग को बाएँ और ई की मात्रा ी के नीचे के भाग को दाएँ भुजाएँ।

4. पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई का प्रयोग करें।
5. अनुस्वार तथा अनुनासिक संकेतों का प्रयोग उच्चारण–क्रम में दाहिनी ओर हटकर करें; यथा–चंद > च ं द, चाँद > चा ँ द।
6. घ–ध और भ–म की भ्रामक स्थिति समाप्त करने के लिए ध और भ को घुण्डीदार बनाएँ; यथा– ध, भ।
7. प्रेम, क्रीम त्रुटि आदि संयुक्त वर्गों में स्वतंत्र 'र' का प्रयोग करें; यथा– प्रेम > प्रेम, क्रीम > क्रीम, त्रुटि > त्रुटि आदि।

(ग) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा 1995 में अनेक विद्वानों से नागरी–सुधार संबंध में सुझाव मांगा गया। श्रीनिवास ने समिति के सामने 'प्रति देवनागरी' नया नाम रखते हुए इस संदर्भ में कुछ सुझाव दिए जिनकी कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. वर्णों की संख्या कम करने के लिए एक वर्ण को परिवर्तित कर दूसरे वर्ण बनाए गए।
2. सभी स्वर 'अ' के आधार पर बनाए गए थे।
3. सुधार–प्रयत्न से वर्ण–संकेत में बहुत अधिक नवीनता आ गई थी।

   बहुत अधिक नवीनता हो जाने से इन सुधारों को महत्व न मिला।

(घ) उत्तर प्रदेश सरकार (प्रथम प्रयास)– 31 जुलाई, 1947 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में 'नागरी सुधार समिति' का गठन किया। इस समिति के द्वारा कई सुझाव दिए गए–

1. शिरोरेखा का प्रयोग हो।
2. जिन व्यंजनों के उत्तरार्द्ध में खड़ी पाई न हो उनसे संयुक्त रूप बनाते समय उसमें हलंत का प्रयोग करें; यथा – गड्ढा, गद्दी।
3. 'इ' की मात्रा को वर्ण के दाहिने लगाएँ किंतु लम्बाई आधी कर दें, यथा – मिलन > मीलन, तिल > तील आदि।
4. घ–ध और भ–म के भ्रम को दूर करने के लिए धर और भ का घुण्डीदार = 'ध', 'भ' प्रयोग करें।
5. पूर्णविराम को खड़ी पाई के रूप में प्रयोग करें।
6. अनुस्वार के लिए शून्य (0) और अनुनासिक के लिए बिन्दु (.) का प्रयोग होना चाहिए।
7. संयुक्त वर्णों (क्ष, त्र, ज्ञ आदि) को यथासाध्य निकाल देना चाहिए।

(ङ) उत्तर प्रदेश सरकार (द्वितीय प्रयास) : नागरी प्रचारिणी सभा के अनुरोध पर उत्तर प्रदेश सरकार ने एक 'लिपि सुधार–परिषद्' का गठन किया। 28, 29 नवंबर, 1953 को देश के उपराष्ट्रपति डॉ0 राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में परिषद् की बैठक हुई, जिसमें चौदह प्रांतों के मुख्यमंत्रियों और उनके भाषा शास्त्रियों ने भाग लिया। इस समिति के सर्वसम्मति से स्वीकृति सुझा इस प्रकार थे –

1. ध और भ के समान छ को भी घुण्डीदार 'छ' बनाएँ।
2. संयुक्त वर्णों को स्वतंत्र वर्णों के माध्यम से लिखे (मात्र क्ष के पूर्ववत् प्रयोग पर बल दिया गया)। अन्य सुधारों के संबंध में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में दिए गए सुझावों की सराहना की गई।

(च) इनके अतिरिक्त पंजाब हिन्दु महासभा, दक्षिण हिंदी–प्रचार सभा, मद्रास : राष्ट्र–भाषा प्रचार समिति, वर्धा; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना तथा हिंदी प्रचार परिषद्, बंगलौर आदि के द्वारा भी नागरी–सुधार के संबंध में प्रयत्न किये गए, जो पूर्ववर्णित सुधारों के समान हैं।

(छ) नागरी–सुधार के प्रयास संदर्भ में आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों – डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, डॉ0 उदयनारायण तिवारी, डॉ0 भोलानाथ तिवारी, डॉ0 कैलाशचन्द्र भाटिया, डॉ0 हरदेव बाहरी और डॉ0 शंकर द्विवेदी की सराहनीय भूमिका रही है।

देवनागरी सुधार–विवेचन

देवनागरी लिपि के समस्त सुधारों को समवेत रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं –

1. समय–स्थान की बचत के साथ त्वरा–लेखन के लिए स्वर–मात्राओं का पूर्ववत प्रयोग करें। परम्परागत प्रयोग की समानता को देखते हुए 'इ' की मात्रा 'ि' का पूर्ववत प्रयोग करें।
2. 'र' के लिए प्रचलित चार रूपों (र) के स्थान पर एक स्वतंत्र संकेत का ही प्रयोग करें; यथा– राम, क्रम > क्रम, ड्रम > ड्रम, मर्म > मर्म।
3. एक वर्ण के लिए प्रयुक्त होने वाले दो संकेतों के स्थान पर केवल एक संकेत निर्धारित हो; यथा– अ, झ, ण, ल और श आदि।

   इसी प्रकार स्पष्टता, सरलता और बहुप्रचलन के आधार पर अ, झ, ण, ल, श का ही प्रयोग वैज्ञानिक है।
4. दो वर्णों के लगभग समान संकेतों से भ्रामक स्थिति उत्पन्न होती है; यथा– ख > रव, (खाना > रवाना), घ > ध (घाम > धाम), रा (आधा ण) > (अराडा > अराड़ा)

   इस समस्या के हल हेतु सम्बन्धित वर्णों में इस प्रकार परिवर्तन करें –

   (ख > ख, घ > ध, भ > भ और 'रा' के स्थान पर 'ण' का ही प्रयोग करें)।
5. संयुक्त वर्णों के स्थान पर स्वतंत्र ध्वनियों का प्रयोग करें, यथा– क्ष > क्ष, त्र > त्र, ज्ञ > ज्ञ् श्र > श्र, क्त > क्त आदि।
6. नागरी लिपि में क, ख, ग, ज, फ ध्वनि चिह्न पहले से ही विद्यमान हैं। इनमें ही संघर्षी चिह्न लगाकर अरबी–फारसी की क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियों का लेखन कर सकते हैं। इससे स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के साथ नागरी लिपि पर अतिरिक्त लिपि–चिह्नों का बोझ नहीं आएगा।
7. अंग्रेजी की 'ऑ' ध्वनि का हिंदी में प्रयोग होने लगा है; यथा– डॉक्टर, कॉलेज, बॉल आदि। इसे अपना लेना चाहिए और इसे 'चन्द्रांक कह सकते हैं।
8. पूर्णविराम के स्थान पर '।' का ही प्रयोग करना चाहिए।
9. अनुनासिक तथा अनुस्वार के शुद्ध उच्चारण और लेखन को स्पष्ट रूप देने हेतु अनुनासिक (ँ) रूप में और अनुस्वार पूर्ववत् (.) प्रयोग करना चाहिए, यथा–चाँद, चंद।
10. नागरी के प्रत्येक अंक के लिए एक चिह्न का प्रयोग करना चाहिए नागरी के नौ अंक के लिए चार संकेतों, छह के लिए तीन और आठ के लिए दो संकेतों के प्रयोग मिलते हैं। इनमें सरलता बहुप्रयुक्त चिह्न रूप ही (1, 8, 6) अपनाना चाहिए।